International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 253-257

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 253-257
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-01-2022
Accepted: 07-02-2022

डॉ. पूजा सैनी
सहायक प्रवक्ता, अग्रवाल महाविद्यालय, बल्लबगढ़, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. पूजा सैनी
सहायक प्रवक्ता, अग्रवाल महाविद्यालय, बल्लबगढ़, हरियाणा, भारत

विक्रमादित्य के नवरत्न

डॉ. पूजा सैनी

प्रस्तावना

चक्रवर्ती सम्राट विक्रमादित्य परामारवंशिय राजा गन्धर्वसेन के पुत्र ओर नीतिशतकम् के रचयिता राजर्षि भर्तृहरी के अनुज थे। इनकी माता का नाम वीरमती था। भविष्य पुराण के अनुसार इनका जन्म भागवान शंकर के प्रसाद से उन्ही के अंशावतार के रुप में हुआ था। जिसका एक ही लक्ष्य था वैदिक–धर्म–ध्वंसक शक आक्रांताओं का विनाश करना। यह वह काल था जब शक आक्रमणकारियों के कारण धर्म का ह्रास (क्षय) हो रहा था और उनके प्रचण्ड आघात से समग्र भारत तिलमिला उठा था तब विक्रमादित्य ने 3 लाख शकों का नाश कर उने परास्त करके भारत भूमि के बाहर खदेड़ दिया ओर पुनः वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित किया। शकों का नाश करने के कारण सम्राट विक्रमादित्य को शकारी (शकों का शत्रु) की उपाधि प्राप्त हुईं । इसी विजय की उपलक्ष्य पर एवं भर्तृहरी के विरक्त हो जाने के पश्चात 57 ईसापूर्व में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा कि तिथि को सम्राट विक्रमादित्य का राज्याभिषेक हुआ ओर उन्होंने इसी दिवस पर चैत्रादि विक्रम संवत् का शुभारंभ किया। उज्जैनी नगर को राजधानी बनाकर समग्र भारतवर्ष पर उन्होंने एकछत्र राज किया। सम्राट विक्रमादित्य न्यायप्रिय राज थे। जो अपने ज्ञान, वीरता और उदारशीलता के लिए प्रसिद्ध थे । उनके पराक्रम को देखकर ही उन्हें महान सम्राट कहा गया और उनके नाम की उपाधि कुल 14 भारतीय राजाओं को दी गई । ''विक्रमादित्य'' की उपाधि भारतीय इतिहास में बाद के कई अन्य राजाओं ने प्राप्त की थी, जिनमें गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय और सम्राट हेमचन्द्र विक्रमादित्य (जो हेमु के नाम से प्रसिद्ध थे) उल्लेखनीय हैं। राजा विक्रमादित्य नाम, 'विक्रम' और 'आदित्य' के समास से बना है जिसका अर्थ 'पराक्रम का सूर्य' या 'सूर्य के समान पराक्रमी' है।उन्हें विक्रम या विक्रमार्क (विक्रम. अर्क) भी कहा जाता है (संस्कृत में अर्क का अर्थ सूर्य है)। इनकी न्यायप्रियता और सहस को लेकर सिंहासन बत्तीसी और बेताल पच्चीसी नामक कथाएं आज भी भारतीय जनमानस बहुत प्रसिद्ध है। अनुश्रुत विक्रमादित्य, संस्कृत और भारत के क्षेत्रीय भाषाओं, दोनों में एक लोकप्रिय व्यक्तित्व है। उनका नाम बड़ी आसानी से ऐसी किसी घटना या स्मारक के साथ जोड़ दिया जाता है, जिनके ऐतिहासिक विवरण अज्ञात हों, हालांकि उनके इर्द–गिर्द कहानियों का पूरा चक्र फला–फूला है। संस्कृत की सर्वाधिक लोकप्रिय दो कथा–श्रृंखलाएं हैं वेताल पंचविंशति या बेताल पच्चीसी (''पिशाच की 25 कहानियां'') और सिंहासन–द्वात्रिंशिका (''सिंहासन की 32 कहानियां'' जो सिहांसन बत्तीसी के नाम से भी विख्यात हैं)। इन दोनों के संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाओं में कई रूपांतरण मिलते हैं।[1]

पिशाच (बेताल) की कहानियों में बेताल, पच्चीस कहानियां सुनाता है, जिसमें राजा बेताल को बंदी बनाना चाहता है और वह राजा को उलझन पैदा करने वाली कहानियां सुनाता है और उनका अंत राजा के समक्ष एक प्रश्न रखते हुए करता है। वस्तुतः पहले एक साधु, राजा से विनती करते हैं कि वे बेताल से बिना कोई शब्द बोले उसे उनके पास ले आएं, नहीं तो बेताल उड़ कर वापस अपनी जगह चला जाएगाद्य राजा केवल उस स्थिति में ही चुप रह सकते थे, जब वे उत्तर न जानते हों, अन्यथा राजा का सिर फट जाताद्य दुर्भाग्यवश, राजा को पता चलता है कि वे उसके सारे सवालों का जवाब जानते हैंय इसीलिए विक्रमादित्य को उलझन में डालने वाले अंतिम सवाल तक, बेताल को पकड़ने और फिर उसके छूट जाने का सिलसिला चौबीस बार चलता है। इन कहानियों का एक रूपांतरण कथा–सरित्सागर में देखा जा सकता है।

सिंहासन के किस्से, विक्रमादित्य के उस सिंहासन से जुड़े हुए हैं जो खो गया था और कई सदियों बाद धार के परमार राजा भोज द्वारा बरामद किया गया था। स्वयं राजा भोज भी काफी प्रसिद्ध थे और कहानियों की यह श्रृंखला उनके सिंहासन पर बैठने के प्रयासों के बारे में है। इस सिंहासन में 32 पुतलियां लगी हुई थीं, जो बोल सकती थीं और राजा को चुनौती देती हैं कि राजा केवल उस स्थिति में ही सिंहासन पर बैठ सकते हैं, यदि वे उनके द्वारा सुनाई जाने वाली कहानी में विक्रमादित्य की तरह उदार हैं।

इससे विक्रमादित्य की 32 कोशिशें (और 32 कहानियां) सामने आती हैं और हर बार भोज अपनी हीनता स्वीकार करते हैं। अंत में पुतलियां उनकी विनम्रता से प्रसन्न होकर उन्हें सिंहासन पर बैठने देती हैं।

इनकी कीर्ति में इनके सभा (दरबार) के नवरत्नों का भी बडा योगदान रहा है। भारतीय परंपरा के अनुसार धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, खटकरपारा, कालिदास, वेतालभट्ट (या (बेतालभट्ट), वररुचि और वराहमिहिर उज्जैन में विक्रमादित्य के राज दरबार का अंग थे।[2] कहते हैं कि राजा के पास ''नवरत्न'' कहलाने वाले नौ ऐसे विद्वान थे। नवरत्न का शाब्दिक अर्थ है – नौ रत्न। भारतीय संस्कृति में नवरत्न शैली में निर्मित आभूषणों का विशेष सांस्कृतिक महत्व है। कुछ राजा अपने दरबार में नौ विद्वान रखते थे। उन्हें भी 'नवरत्न' कहा जाता था। विक्रमादित्य के दरबार में नवरत्न थे।

ये नौ रत्न हैं–

वज्रमणि, वैडूर्यमणि, पद्ममणि, माणिक्यमणि, मरकतं, गोमेधिक, विद्रुम, मुक्ता और नील

माणिक्यं तरणेः सुजात्यममलं मुक्ताफलं शीतगोः
माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य गारुत्मतम
देवेज्यस्य च पुष्पराजमसुराचार्यस्य वज्रं शनेः
नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेद–वैदूर्यके

विक्रमार्कस्य आस्थाने नवरत्नानि
धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहः शंकूवेताळभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेस्सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

धन्वन्तरि, क्षपनक, अमरसिंह, शंकु, खटकरपारा, कालिदास, वेतालभट्ट, वररुचि और वराहमिहिर उज्जैन में महाराज विक्रमादित्य के राज सभा (दरबार) का अंग थे। इनमें महाकवि कालिदास तथा ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान पंडित वराहमिहिर का नाम प्रसिद्ध है। कालिदास प्रसिद्ध संस्कृत राजकवि थे। वराहमिहिर उस युग के प्रमुख ज्योतिषी थे, जिन्होंने विक्रमादित्य की बेटे की मौत की भविष्यवाणी की थी। वेतालभट्ट एक धर्माचार्य थे। माना जाता है कि उन्होंने विक्रमादित्य को सोलह छंदों की रचना ''नीति–प्रदीप'' (''आचरण का दीया'') का श्रेय दिया है।[3]

कालिदास ज्योतिर्विदाभरण के अन्तिम २२वें अध्याय में विक्रमादित्य, उनकी सभा के विद्वानों का परिचय तथा अपनी कृति का समय देते है।

श्लोकैश्चतुर्दशशतै सजिनैर्मयैव ज्योतिर्विदाभरण काव्य विधानमेतत् ॥[4]
विक्रमार्कवर्णनम्–वर्षे श्रुति स्मृति विचार विवेक रम्ये श्रीभारते खधृतिसम्मितदेशपीठे।
मत्तोऽधुना कृतिरियं सति मालवेन्द्रे श्रीविक्रमार्क नृपराजवरे समासीत् ॥[5]

अर्थ– १४२४ श्लोकों का यह ज्योतिर्विदाभरण मालवेन्द्र विक्रमादिय के आश्रय में लिखा गया जो १८० देशों पर श्रुति–स्मृति–विचार द्वारा शासन करते हैं।

नृपसभायां पण्डितवर्गा–शङ्कु सुवाग्वररुचिर्मणिरङ्गुदत्तो जिष्णुस्त्रिलोचनहरो घटखर्परराख्य।
अन्येऽपि सन्ति कवयोऽमरसिंहपूर्वा यस्यैव विक्रमनृपस्य सभासदोऽमो ॥[6]
सत्यो वराहमिहिर श्रुतसेननामा श्रीबादरायणमणित्थकुमारसिंहा।
श्रीविक्रमार्कनृपसंसदि सन्ति चौते श्रीकालतन्त्रकवयस्त्वपरे मदाद्या ॥[7]
नवरत्नानि–धन्वन्तरि क्षपणकामरसिंहशङ्कुर्वेतालभट्ट घटखर्पर कालिदासा।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥[8]
अर्थ– मेरे अतिरिक्त कई विद्वान् हैं–शङ्कु, वररुचि, मणि, अङ्गुदत्त, जिष्णुगुप्त (ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त के पिता), त्रिलोचन, हर, घटखर्पर, अमरसिंह, कालतन्त्र लेखक (कृष्ण मिश्र), सत्याचार्य (ज्योतिषी), वराहमिहिर, श्रुतसेन, बादरायण, मणित्थ, कुमारसिंह। उनकी सभा के ९ रत्न हैं–धन्वन्तरि (तृतीय, वर्तमान् सुश्रुत संहिता के लेखक), क्षपणक (वर्तमान् में उपलब्ध जैन शास्त्रों के लेखक), अमरसिंह (अमरकोष), शङ्कु (भूमिति = सर्वेक्षण), वेतालभट्ट (पुराण का नवीन संस्करण), घटखर्पर (तन्त्र), कालिदास, विख्यात वराहमिहिर, वररुचि (पाणिनि व्याकरण पर वार्तिक लिखने वाले)।

ज्योतिर्विदाभरण में महाकवि कालिदास ने सम्राट विक्रमादित्या के पराक्रम का भी वर्णन दिया है–

यो रुक्मदेशाधिपतिं शकेश्वरं जित्वा गृहीत्वोज्जयिनीं महाहवे।
आनीय सम्भ्राम्य मुमोच यत्त्वहो स विक्रमार्कः समसह्यविक्रमः ॥[9]

तस्मिन् सदाविक्रममेदिनीशे विराजमाने समवन्तिकायाम्।
सर्व प्रजा मङ्गल सौख्य सम्पद् बभूव सर्वत्र च वेदकर्म ॥[10]

अर्थ – विक्रमादित्य जैसा प्रतापी और कौन हो सकता है जिसने महायुद्ध में रुक्मदेश अधिपति शकेश्वर को बन्दी बना कर उज्जैन लाये तथा नगर में घुमा कर छोड़ दिया? उनके वेदानुसार शासन के कारण लोगों में सौख्य और सम्पद है।

भविष्य पुराण के अनुसार कलियुग के तीन सहस्र (तीन हजार) वर्ष बीतने पर सम्राट विक्रमादित्य का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने सौ वर्षों तक शासन किया। सम्राट विक्रमादित्या का काल 82 ईसापूर्व से लेकर 19 ईसवी तक था । उनके मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र देवभक्त ने 10 वर्ष तक शासन किया। भविष्य पुराण से यह भी पता चलता है कि उनके मृत्यु के पश्चात उनका महान साम्राज्य कई राज्यों में विभक्त हो गया, ओर पुनः वैदिक धर्म का ह्रास होने लगा तब शक आक्रांताओं ने इस बात का फायदा उठाकर पुनः भारतवर्ष पर आक्रमन शुरू किये ओर शको ने राजा देवभक्त को मार कर उज्जैनी अपने आधिन कर दी तब सम्राट विक्रमादित्य के पौत्र शालिवाहन ने शकों का समूल नाश कर पुनः वैदिक धर्म को भारतवर्ष में प्रतिष्ठित किया। इस विजय के उपलक्ष पर सम्राट शालिवाहन ने चौत्र शुक्ल प्रतिपदा को 78ईसवी में शालिवाहन शक (शकान्त संवत्) का शुभारंभ किया। अपने दादा विक्रमादित्य के समान शालिवाहन भी वीर पराक्रमी राजा थे।

सम्राट विक्रमादित्य ने लुप्त हो चुकी उस अयोध्यानगरी की पुनः खोज कर वहा श्रीरामजन्मभूमी पर एक 84 खम्भोंवाले भव्य मंदिर का निर्माण करवाया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतवर्ष के अनेक तीर्थस्थलों व मंदिरों का जीर्नोधार करवाया था। उनका साम्राज्य अरबदेश तक फैला हुआ था और वह कई विद्वानों को भेजकर सभ्यता संस्कृति का प्रचार प्रसार किया था। इस प्रकार भारतीय सभ्यता–संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान के संरक्षण और प्रचार प्रसार में चक्रवर्ती सम्राट विक्रमादित्य परमार का अद्वितीय योगदान है।[11]

राजा विक्रमादित्य के दरबार में मौजूद नवरत्नों में उच्च कोटि के कवि, विद्वान, गायक और गणित के प्रकांड पंडित शामिल थे, जिनकी योग्यता का डंका देश–विदेश में बजता था। चलिए जानते हैं कौन थे।

ये हैं नवरत्न

1. **धन्वन्तरि–** नवरत्नों में इनका स्थान गिनाया गया है। इनके रचित नौ ग्रंथ पाये जाते हैं। वे सभी आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र

से सम्बन्धित हैं। चिकित्सा में ये बड़े सिद्धहस्त थे। हमारे साहित्य में तीन धन्वंतरियों का उल्लेख मिलता है। दैविक, वैदिक और ऐतिहासिक। दैविक धन्वंतरि के विषय में कहा गया है कि वे रोग पीड़ित देवताओं की चिकित्सा करते थे। उनसे संबंधित अनेक कथाएं प्राप्त होती हैं। आयुर्वेद साहित्य में प्रथम धन्वंतरि वैद्य माने जाते हैं। इतिहास में दो धन्वंतरियों का वर्णन आता है। प्रथम वाराणसी के क्षत्रिय 'राजा दिवोदास' और द्वितीय वैद्य परिवार के 'धन्वंतरि'। दोनों ने ही प्रजा को अपनी वैद्यक चिकित्सा से लाभान्वित किया। भावमिश्र का कथन है कि सुश्रुत के शिक्षक 'धन्वंतरि' शल्य चिकित्सा के विशेषज्ञ थे। सुश्रुत गुप्तकाल से संबंधित थे। इतना अवश्य है कि प्राचीनकाल में वैद्यों को धन्वंतरि कहा जाता होगा। इसी कारण दैविक से लेकर ऐतिहासिक युग तक अनेक धन्वंतरियों का उल्लेख मिलता है। शल्य तंत्र के प्रवर्तक को धन्वंतरि कहा जाता था। इसी कारण शल्य चिकित्सकों का संप्रदाय धन्वंतरि कहलाता था। शल्य चिकित्सा में निपुण वैद्य धन्वंतरि उपाधि धारण करते होंगे। विक्रमादित्य के धन्वंतरि भी शल्य चिकित्सक थे। वे विक्रमादित्य की सेना में मौजूद थे। उनका कार्य सेना में घायल हुए सैनिकों को ठीक करना था। धन्वंतरि द्वारा लिखित ग्रंथों के ये नाम हैं– 'रोग निदान', 'वैद्य चिंतामणि', 'विद्याप्रकाश चिकित्सा', 'धन्वंतरि निघण्टु, वैद्यक भास्करोदय' तथा 'चिकित्सा सार संग्रह'। आज भी किसी वैध की प्रशंसा करनी हो तो उसे 'धन्वन्तरि' उपमा दी जाती है। हिन्दू धर्म में एक देवता हैं। वे महान चिकित्सक थे जिन्हें देव पद प्राप्त हुआ। हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार ये भगवान विष्णु के अवतार समझे जाते हैं। इनका पृथ्वी लोक में अवतरण समुद्र मंथन के समय हुआ था। शरद पूर्णिमा को चंद्रमा, कार्तिक द्वादशी को कामधेनु गाय, त्रयोदशी को धन्वंतरी,चतुर्दशी को काली माता और अमावस्या को भगवती लक्ष्मी जी का सागर से प्रादुर्भाव हुआ था। इसीलिये दीपावली के दो दिन पूर्व धनतेरस को भगवान धन्वंतरी का जन्म धनतेरस के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन इन्होंने आयुर्वेद का भी प्रादुर्भाव किया था। इन्हें भगवान विष्णु का रूप कहते हैं जिनकी चार भुजायें हैं। उपर की दोंनों भुजाओं में शंख और चक्र धारण किये हुये हैं। जबकि दो अन्य भुजाओं मे से एक में जलूका और औषध तथा दूसरे मे अमृत कलश लिये हुये हैं। इनका प्रिय धातु पीतल माना जाता है। इसीलिये धनतेरस को पीतल आदि के बर्तन खरीदने की परंपरा भी है। इन्हे आयुर्वेद की चिकित्सा करनें वाले वैद्य आरोग्य का देवता कहते हैं। इन्होंने ही अमृतमय औषधियों की खोज की थी। इनके वंश में दिवोदास हुए जिन्होंने 'शल्य चिकित्सा' का विश्व का पहला विद्यालय काशी में स्थापित किया जिसके प्रधानाचार्य सुश्रुत बनाये गए थे। सुश्रुत दिवोदास के ही शिष्य और ऋषि विश्वामित्र के पुत्र थे। उन्होंने ही सुश्रुत संहिता लिखी थी। सुश्रुत विश्व के पहले सर्जन (शल्य चिकित्सक) थे। दीपावली के अवसर पर कार्तिक त्रयोदशी–धनतेरस को भगवान धन्वंतरि की पूजा करते हैं। कहते हैं कि शंकर ने विषपान किया, धन्वंतरि ने अमृत प्रदान किया और इस प्रकार काशी कालजयी नगरी बन गयी।

आयुर्वेद के संबंध में सुश्रुत का मत है कि ब्रह्माजी ने पहली बार एक लाख श्लोक के, आयुर्वेद का प्रकाशन किया था जिसमें एक सहस्र अध्याय थे। उनसे प्रजापति ने पढ़ा तदुपरांत उनसे अश्विनी कुमारों ने पढ़ा और उन से इन्द्र ने पढ़ा। इन्द्रदेव से धन्वंतरि ने पढ़ा और उन्हें सुन कर सुश्रुत मुनि ने आयुर्वेद की रचना की। भावप्रकाश के अनुसार आत्रेय प्रमुख मुनियों ने इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर उसे अग्निवेश तथा अन्य शिष्यों को दिया।विध्याताथर्व सर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्।स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्ष श्लोकमयीमृजुम्।।,

2. **क्षपणक–** राजा विक्रमादित्य के दूसरे नवरत्न क्षपणक थे। इनके नाम से ही प्रतीत होता है कि ये बौद्ध सन्यासी थे। हिन्दू लोग जैन साधुओं के लिए 'क्षपणक' नाम का प्रयोग करते थे। इससे एक बात यह भी सिद्ध होती है कि प्राचीन काल में मन्त्रित्व आजीविका का साधन नहीं था अपितु जनकल्याण की भावना से मन्त्रिपरिषद का गठन किया जाता था। यही कारण है कि संन्यासी भी मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते थे। इन्होंने कुछ ग्रंथ लिखे जिनमें 'भिक्षाटन' और 'नानार्थकोश' ही उपलब्ध बताये जाते हैं। विशाखदत्त ने अपने संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस' में भी क्षपणक के वेश में गुप्तचरों की स्थिाति का उल्लेख मिलता है। 'महा क्षपणक' और 'क्षपणक' नामक लेख में श्री परशुराम कृष्ण गोड़े जी ने 'अनेकार्थध्वनिमंजरी' नामक कोश के रचयिता को क्षपणक माना है। इस ग्रंथ का समय 800 से 900 ई० माना जाता है।
3. **अमरसिंह–** अमरसिंह प्रकांड विद्वान थे। बोध–गया के वर्तमान बुद्ध–मन्दिर से प्राप्य एक शिलालेख के आधार पर इनको उस मन्दिर का निर्माता कहा जाता है। राजशेखर द्वरा लिखित 'काव्यमीमांसा' के अनुसार अमरसिंह ने उज्जयिनी में काव्यकार परीक्षा उत्तीर्ण की थी। संस्कृत का सर्वप्रथम कोश अमरसिंह का 'नामलिंगानुशासन' है, जो अब भी उपलब्ध है तथा 'अमरकोश' के नाम से प्रसिद्ध है। उनके अनेक ग्रन्थों में एक मात्र 'अमरकोश' ग्रन्थ ऐसा है कि उसके आधार पर उनका यश अखण्ड है। संस्कृतज्ञों में एक उक्ति चरितार्थ है जिसका अर्थ है 'अष्टाध्यायी' पण्डितों की माता है और 'अमरकोश' पण्डितों का पिता अर्थात् यदि कोई इन दोनों ग्रंथों को पढ़ ले तो वह महान् पण्डित बन जाता है। 'अमरकोश' में कालिदास के नाम का उल्लेख आता है। मंगलाचरण में बुद्धदेव की प्रार्थना है और इस कोश में बौद्ध शब्द विशेषकर महायान संप्रदाय के हैं। अतएव यह निश्चित है कि कोश की रचना कालिदास और बुद्धकाल के बाद हुई होगी। अमरकोश पर 50 टीकाएं उपलब्ध हैं। यही उसकी महत्ता का प्रमाण है। अमरकोश से अनेक वैदिक शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट हुआ है। डॉ. कात्रे ने इन वैदिक शब्दों की सूची अपने लेख 'अमरकोशकार की देन' में दी है। बोध गया के अभिलेख का उल्लेख 'कीर्न' महोदय ने 'वृहज्जातक' की भूमिका में किया है। अभिलेख में लिखा गया है कि विक्रमादित्य संसार के प्रसिद्ध राजा हैं। उनकी सभा में नव विद्वान हैं, जो नवरत्न के नाम से जाने जाते हैं। उनमें अमरदेव नाम का विद्वान राजा का सचिव है। वह बहुत बड़ा विद्वान है और राजा का प्रिय पात्र है। कालिदास ने विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में अमर का नामोल्लेख किया है। ज्योतिर्विदाभरण के 22वें अध्याय के 8वें श्लोक में अमर को कवि कहा गया है। उनका कोश संस्कृत साहित्य का अनुपम कोश है।
4. **शंकु राजा विक्रमादित्य** के नवरत्नों में शंकु का नाम उल्लेखनीय है। शंकु का पूरा नाम 'शङ्कुक' था। शङ्कुक को संस्कृत का विद्वान, ज्योतिष शास्त्री माना जाता था। प्रकीर्ण पद्यों में शंकु का उल्लेख शबर स्वामी के पुत्र के रूप में हुआ है। शबर स्वामी जी की चार पत्नियाँ थी। उनकी पहली पत्नी से वराह मिहिर, दूसरी पत्नी से भर्तृहरि और विक्रमादित्य, तीसरी पत्नी से हरीशचन्द्र, वैद्य और शंकु तथा चौथी पत्नी से अमरसिंह का जन्म हुआ। शबर स्वामी 'शबरभाष्य' के रचयिता थे। इनका पूरा नाम 'शङ्कुक' है इनका एक ही काव्य–ग्रन्थ 'भुवनाभ्युदयम्' बहुत प्रसिद्ध रहा है किन्तु आज वह भी पुरातत्व का विषय बना हुआ है इनको संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् माना गया है। शंकु को विद्वान् मंत्रवादिन, कुछ विद्वान रसाचार्य और कुछ विद्वान इन्हें ज्योतिषी मानते हैं। वास्तव में शंकु क्या थे, यह बताना अभी असंभव है। 'ज्योतिर्विदाभरण' के एक श्लोक में इन्हें कवि के रूप में चित्रित किया गया है। विक्रम की सभा के रत्न होने के कारण इनकी साहित्यिक

विद्वता का परिचय अवश्य मिलता है। इनको संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् माना गया है।

5. **वेतालभट्ट विक्रमादित्य** के रत्नों में वेतालभट्ट के नामोल्लेख से आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति का नाम वेतालभट्ट अर्थात भूत–प्रेत का पंडित कैसे हो गया? इनका यथार्थ नाम यही था या अन्य कुछ विदित नहीं हो पाया है। भूत–प्रेतादि की रोमांचक कथाओं के मध्य वेतालभट्ट की ऐतिहासिकता प्रच्छन्न (छिप) हो गई। विक्रमादित्य और वेताल से संबंधित अनेक कथाएं मिलती हैं।
प्राचीनकाल में भट्ट अथवा भट्टारक, उपाधि पंडितों की होती थी। वेतालभट्ट से तात्पर्य है भूत–प्रेत–पिशाच साधना में प्रवीण व्यक्ति। प्रो. भट्टाचार्य के मत से संभवतः वेतालभट्ट ही 'वेताल पञ्चविंशतिका' नामक ग्रंथ के कर्ता रहे होंगे। वेतालभट्ट उज्जयिनी के श्मशान और विक्रमादित्य के साहसिक कृत्यों से परिचित थे। संभवतः इसलिए उन्होंने 'वेताल पञ्चविंशतिका' नामक कथा ग्रंथ की रचना की होगी। वेताल कथाओं के अनुसार विक्रमादित्य ने अपने साहसिक प्रयत्न से अग्निवेताल को वश में कर लिया था। वह अदृश्य रूप से उनके (राजा के) अद्भुत कार्यों को संपन्न करने में सहायता देता था। वेताल भट्ट साहित्यिक होते हुए भी भूत–प्रेत–पिशाचादि की साधना में प्रवीण तथा तंत्र शास्त्र के ज्ञाता होंगे। यह भी संभव है कि वेताल भट्ट अग्नेय अस्त्रों एवं विद्युत शक्ति में पारंगत होंगे तथा कापालिकों एवं तांत्रिकों के प्रतिनिधि रहे होंगे। इनकी साधना शक्ति से राज्य को लाभ होता होगा। विक्रमादित्य ने वेताल की सहायता से असुरों, राक्षसों और दुराचारियों को नष्ट किया होगा।

6. **घटखर्पर** जो संस्कृत जानते हैं वे समझ सकते हैं कि घटखर्पर किसी व्यक्ति का नाम नही हो सकता है। इनका भी वास्तविक नाम यह नहीं था। घटखर्पर के विषय में भी अल्प जानकारी ही उपलब्ध है। इनका यह नाम क्यों पड़ा, यह चिंतन का विषय है। इनके विषय में एक किंवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि कालिदास के साथ में रहने से ये कवि बन गए थे। इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो कवि मुझे 'यमक' और 'अनुप्रास' रचना में पराजित कर देगा, उसके घर वे फूटे घड़े से पानी भरेंगें। बस तभी से इनका नाम 'घटखर्पर' प्रसिद्ध हो गया और वास्तविक नाम लुप्त हो गया। इनके रचित दो लघुकाव्य उपलब्ध हैं। इनमें से एक पद्यों का सुंदर काव्य है, जो संयोग श्रृंगार से ओत–प्रोत है। उसकी शैली, मधुरता, शब्द विन्यास आदि पाठक के हृदय पर विक्रम युग की छाप छोड़ते हैं। यह काव्य 'घटखर्पर' काव्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह दूत–काव्य है। इसमें मेघ के द्वारा संदेश भेजा गया है। घटखर्पर रचित दूसरा काव्य 'नीतिसार' माना जाता है। इसमें 21 श्लोकों में नीति का सुंदर विवेचन किया गया है। इनके प्रथम काव्य पर अभिनव गुप्त, भरतमल्लिका, शंकर गोवर्धन, कमलाकर, वैद्यनाथ आदि प्रसिद्ध विद्वानों ने टीका ग्रंथ लिखे थे।

7. **कालिदास** ऐसा माना जाता है कि कालिदास सम्राट विक्रमादित्य के प्राणप्रिय कवि थे। उन्होंने भी अपने ग्रन्थों में विक्रम के व्यक्तित्व का उज्ज्वल स्वरूप निरूपित किया है। कालिदास की कथा विचित्र है। कहा जाता है कि उनको देवी 'काली' की कृपा से विद्या प्राप्त हुई थी। इसीलिए इनका नाम 'कालिदास' पड़ गया। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से यह कालीदास होना चाहिए था किन्तु अपवाद रूप में कालिदास की प्रतिभा को देखकर इसमें उसी प्रकार परिवर्तन नहीं किया गया जिस प्रकार कि 'विश्वामित्र' को उसी रूप में रखा गया। जो हो, कालिदास की विद्वता और काव्य प्रतिभा के विषय में अब दो मत नहीं है। वे न केवल अपने समय के अप्रितम साहित्यकार थे अपितु आज तक भी कोई उन जैसा अप्रितम साहित्यकार उत्पन्न नहीं हुआ है। उनके चार काव्य और तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। शकुन्तला उनकी अन्यतम कृति मानी जाती है।

8. **वराहमिहिर वराहमिहिर** ईसा के 5 वी 6 छठी शताब्दी के भारतीय गणितज्ञ और खगोलशास्त्री थे। वराहमिहिर ने ही अपने 'पञ्चसिद्धांतिका' में सबसे पहले बताया कि अयनांश (सूर्य की गति का विशेष भाग) का मान 50.32 सेकेण्ड के बराबर है। सूर्यनारायण व्यास के अनुसार राजा विक्रमादित्य की सभा में वराहमिहिर ज्योतिष के प्रकांड विद्वान् थे। वृद्ध वराहमिहिर के रूप में इनका उल्लेख मिलता है। वृद्ध वराहमिहिर विषयक सामग्री अद्यावधि काल के गर्त में छिपी है। 'वृहत्संहिता', 'वृहज्जातक' आदि ग्रंथों के कर्ता वराहमिहिर गुप्त युग के थे। भारतीय ज्योतिष–शास्त्र इनसे गौरवास्पद है। वराहमिहिर ने ज्योतिष विषयक अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। वे ग्रंथ हैं– 'वृहत्संहिता', 'वृहज्जातक', 'समाससंहिता', 'लघुजातक', 'पञ्चसिद्धांतिका', 'विवाह–पटल', 'योगयात्रा', 'वृहत्यात्रा', 'लघुयात्रा। इनमें पञ्चसिद्धांतिका को छोड़कर प्रायः सभी ग्रंथों पर 'भट्टोत्पल' ने टीका ग्रंथों का प्रणयन किया। वराहमिहिर ने अपने ग्रंथों में यवनों के प्रति आदर प्रगट किया है। उन्होंने 36 ग्रीक शब्दों का प्रयोग किया है परंतु उन शब्दों का रूपांतर संस्कृत में किया है। उन्होंने यवन ज्योतिषियों के नामों का भी उल्लेख किया है अतः स्पष्ट है कि ग्रीक से यहां का व्यापारिक संबंध था इसी कारण साहित्यिक आदान–प्रदान हुआ। उनके ग्रंथों में यवनों के उल्लेख की आधारभूमि संभवतः यही है।

9. **वररुचि–** कात्यायन वररुचि कात्यायन पाणीनिय सूत्रों के प्रसिद्ध वार्तिककार थे। वररुचि ने 'पत्रकौमुदी' नामक काव्य की रचना की। 'पत्रकौमुदी' काव्य के आरंभ में उन्होंने लिखा है कि विक्रमादित्य के आदेश से ही वररुचि ने 'पत्रकौमुदी' काव्य की रचना की थी। वररुचि ने 'विद्यासुंदर' नामक एक अन्य काव्य भी लिखा था। इसकी रचना भी उन्होंने विक्रमादित्य के आदेश से किया था। 'प्रबंधचिंतामणि' में वररुचि को विक्रमादित्य की पुत्री का गुरु कहा गया है। 'वासवदत्ता' के लेखक 'सुबंधु' को वररुचि का भगिनेय कहा गया है, परंतु यह संबंध उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। काव्यमीमांसा के अनुसार वररुचि ने पाटलिपुत्र में शास्त्रकार परीक्षा उत्तीर्ण की थी। 'कथासरित्सागर' के अनुसार वररुचि का दूसरा नाम 'कात्यायन' था। इनका जन्म कौशाम्बी के ब्राह्मण कुल में हुआ था। जब ये 5 वर्ष के थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। ये आरंभ से ही तीक्ष्ण बुद्धि के थे। एक बार सुनी बात ये उसी समय ज्यों–की–त्यों कह देते थे। एक समय 'व्याडि' और 'इन्द्रदत्त' नामक विद्वान इनके यहां आए। व्याडि ने प्रातिशाख्य का पाठ किया। इन्होंने इसे वैसे का वैसा ही दुहरा दिया। व्याडि इनसे बहुत प्रभावित हुए और इन्हें पाटलिपुत्र ले गए। वहां इन्होंने शिक्षा प्राप्त की तथा शास्त्रकार की परीक्षा उत्तीर्ण किया। कालिदास की भांति ही वररुचि भी अन्यतम काव्यकर्ताओं में गिने जाते हैं। 'सदुक्तिकर्णामृत', 'सुभाषितावलि' तथा 'शार्ङधर संहिता', इनकी रचनाओं में गिनी जाती हैं। इनके नाम पर मतभेद है। क्योंकि इस नाम के तीन व्यक्ति हुए हैं उनमें से– 1.पाणिनीय व्याकरण के वार्तिककार–वररुचि कात्यायन, 2.'प्राकृत प्रकाश के प्रणेता–वररुचि 3.सूक्ति ग्रन्थों में प्राप्त कवि–वररुचि।

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति का अनौखा व गौरवमय इतिहास रहा कि सम्राट् विक्रमादित्य के राज्य में नौ रत्न के रुप में जो विद्वान थे वे भारत में ही नहीं विश्वभर में प्रसिद्ध रहें। इन विद्वानों में अपनी विद्वता से भारतीय संस्कृति व इतिहास को गौरवान्ति किया परन्तु यह हमारा दुभार्ग्य है कि आज इतिहास में इनका केवल नाममात्र ही शेष रह गया है। जब कभी भी नौ रत्नों की बात कि जाती है तो

अकबर के नौ रत्नों का इतिहास व नाम रहता है और पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाया जाता है इसके विपरीत सम्राट् विक्रमादित्य के नौ रत्नों से आधुनिक पीढ़ी परिचित भी नहीं है जबकि सम्राट् विक्रमादित्य का भारतीय संस्कृति में सराहनीय योगदान रहा है

संदर्भ

1. सम्राट विक्रमाादित्य का इतिहास
2. विक्रमाादित्य की गौरव गाथा–आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि
3. सवंत् प्रवर्त्तक सम्राट विक्रमाादित्य –राजशेखर व्यास, पांडुलिपि प्रकाशन, कृष्ण नगर देहली।
4. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–6
5. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–7
6. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–8
7. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–9
8. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–10
9. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–11
10. ज्योतिर्विदाभरण २२वें अध्याय श्लोक सं–12
11. सम्राट विक्रमाादित्य और उनके नौ रत्न–डॉ. ईश्वरदत्त शास्त्री, मातृ भाषा मन्दिर दारागंज प्रयाग।